वृद्धि दर 8 प्रतिशत, बेरोज़गारी दर 10 प्रतिशत

● योगेश

दसवीं पंचवर्षीय योजना की समीक्षा में इस बात पर सरकार ने काफ़ी आँसू बहाए हैं कि बेरोज़गारों की संख्या बढ़ती जा रही है। 2001-02 में बरोज़गारी की दर थी 8.87 फीसदी जो 2004-05 में बढ़कर 9.11 फीसदी हो गई। लेकिन दूसरी तरफ़ कारपोरेट जगत में चारों ओर जश्न का माहौल है कि अर्थव्यवस्था वृद्धि दर 8 प्रतिशत से भी ऊपर जा पहुँची है। सारी दुनिया भारत की बढ़ती आर्थिक ताकत का लोहा मान रही है! मनमोहन-मोण्टेक-चिदम्बरम की तिकड़ी ने जिस समझदारी के साथ अब तक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण की नीतियों को लागू किया है उससे भारतीय पूँजीपति वर्ग के बड़े भाई लोग काफ़ी खुश हुए हैं। ऐसे जश्न के माहौल में बेरोज़गारी की बात इन्हें कबाब में हड्डी के समान लगती है।

इस समीक्षा में सरकार ने जो समाहार रखा है उसके अनुसार हर दसवाँ भारतीय बेरोज़गार है। और यह रुझान और बढ़ोत्तरी की तरफ़ है। 1993-94 में बेरोज़गारी की दर 5.99 फीसदी थी। यह आँकड़ा 1999-2000 में 7.32 फीसदी, 2001-02 में 8.87 फीसदी, और 2004-05 में 9.11 फीसदी पहुँच गया। इस बीच ग्रामीण बेरोज़गारी की दर 1993-94 के 5.6 फीसदी से बढ़कर 1999-2000 में 7.2 फीसदी पहुंच गई और 2004 में यह 9 प्रतिशत हो गई।

लेकिन यह सरकारी आँकड़ा है और रोज़गारशुदा होने की सरकारी परिभाषा भी ग़ज़ब की है। इसके अनुसार अगर सर्वेक्षण के दिन कोई काम कर रहा है तो उसे रोज़गारशुदा मान लिया जाता है। लेकिन इन आँकड़ों को भी मानें तो 1993-94 से 2004-05 तक शहरी बेरोज़गारी में 50 फीसदी और ग्रामीण बेरोज़गारी में 60 फीसदी की वृद्धि हुई है। 1990 के दशक के शुरुआत में जब नई आर्थिक नीतियाँ लागू हुई थीं तो कहा गया था कि अगर भारत की विकास दर 3.5 फीसदी से 7 फीसदी पहुँच जाए तो बेरोज़गारी अपने-आप ही दूर हो जाएगी। लेकिन यह क्या!! 8.1 प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल होने के बाद बेरोज़गारी ख़त्म होना तो दूर दोगुनी हो गई!

बेरोज़गारों की असल आबादी तो इन आँकड़ों से कहीं ज्यादा है। मौसमी मज़दूरों, घुमन्तू मज़दूरों और खेतिहर मज़दूरों को साल में मुश्किल से 150 दिन का रोज़गार की हासिल होता है। वह भी रोज़गार मुश्किल से ही कहा जाता है। बेरोज़गार का अर्थ यह नहीं है कि जो कुछ नहीं करता वह बेरोज़गार है। बल्कि ऐसे तमाम लोग जिनके पास कोई सुरक्षित और तुलनात्मक रूप से स्थायी रोज़गार नहीं है, वे सभी बेरोज़गारों की श्रेणी में आते हैं। ऐसी भारी आबादी जो गाँवों से होने वाले सीज़नल, सर्कुलर और कम्यूटिंग माइग्रेशन के तहत शहर या पास के कस्बों में जाते हैं, कभी कोई तो कभी कोई काम करके जैसे-तैसे जी लेते हैं, वे सब क्या रोज़गारशुदा कहे जाएँगे? नहीं। अगर ऐसी आबादी को जोड़ लिया जाय तो बेरोज़गारों को आँकड़ा बड़े आराम से 27 से 28 करोड़ के बीच जाकर ठहरता है। 4 करोड़ बेरोज़गार तो वही हैं जिन्होंने रोज़गार दफ्तरों में नाम लिखाया है और इनमें से 3 करोड़ पढ़े-लिखे बेरोज़गार हैं।

रोज़गार पैदा करना तो दूर, उल्टे जो रोज़गार है उसे भी नष्ट किया जा रहा है। 1997 में सार्वजनिक क्षेत्र में 195 लाख 59 हज़ार लोग नौकरी करते थे। 2003 तक यह संख्या घटर कर 185 लाख 80 हज़ार रह गई। निजी क्षेत्र में 1998 में 87 लाख 58 हज़ार लोग नौकरी कर रहे थे। 2003 तक यह संख्या घटकर 84 लाख 21 हज़ार रह गई। इस तरह सार्वजनिक और निजी क्षेत्र को मिला दें तो 5 साल में 13 लाख रोज़गार कम हुए (इकॉनॉमिक सर्वे 2004-05)।

बेरोज़गारी इस व्यवस्था का ढाँचागत संकट है। चिदम्बरम चाहें भी तो इसे दूर नहीं कर सकते। यह इच्छा का प्रश्न है ही नहीं। पूँजीवाद पूर्ण रोज़गार की अवस्था आने पर नष्ट हो जाएगा। बेरोज़गारों की एक रिज़र्व आर्मी के बिना मुनाफे का मैक्सिमाइज़ेशन सम्भव ही नहीं है। और किसी भी पूँजीपति का यही मकसद होता है—अपने मुनाफे को अधिकतम बनाना। वह तभी सम्भव हो सकता है जब वह अपने मज़दूरों को सफलता से नियंत्रण में रख सके। अगर सड़क पर फालतू लोग न हों तो मज़दूर के सामने पूँजीपति की बार्गेनिंग पावर ही क्या बचती है? तो चिदम्बरम न तो चाहेंगे बेरोज़गारी को दूर कर पाना और चाहें तो भी नहीं कर सकते।

●

"मैं इस पर विश्वास नहीं करता कि, अगर दलगत राजनीति बदल भी जाए तो वह उस शैतानी तंत्र को ख़त्म कर सकती है जिसका वह खुद एक हिस्सा है।... मैं अहिंसा में यकीन करता हूँ। लेकिन समस्या यह है कि हमारी सत्ता हिंसा में, बल प्रयोग में, नापाम बमों में, पुलिसिया ज़बर्दस्ती, हवाई बमबारी में, बी-52 और बी-58 जैसे बमवर्षक विमानों में, नाभिकीय हथियारों में और युद्धों में विश्वास करती है। जब तक यह सत्ता-प्रतिष्ठान निर्धारक कारक बना रहेगा, हमारी इस उम्मीद का असलियत में कोई आधार नहीं है कि आने वाली क्रान्ति अहिंसक होगी।"

- लीनस पॉलिंग

(पहले विज्ञान और फिर शान्ति के लिए नोबेल पुरस्कार जीतने वाले मानवतावादी और प्रसिद्ध वैज्ञानिक)